Chapter-2

द्वितीय अध्याय

व्यंग्य का सैद्धान्तिक विवेचन

'वि' उपसर्ग और 'ण्यत्' प्रत्यय के साथ 'अञ्ज' धातु के संयोग से व्यंग्य शब्द की व्युत्पति होती है। इसका अर्थ है जो व्यंजना वृत्ति के द्वारा प्रकट हो, गूढ़ और छिपा हुआ अर्थ, वह लगती हुई बात जिसका कुछ गूढ़ अर्थ हो, ताना, चुटकी आदि।[१] व्यंग्य शब्द का अर्थ अविधात्मक नहीं होता। इस शब्द का अर्थ व्यंजना शक्ति द्वारा ध्वनित होता है अर्थात् परोक्ष संकेत द्वारा सूचित होता है।[२] वर्तमान संन्दर्भ में 'व्यंग्य' शब्द अंग्रेजी के 'सटायर' का हिन्दी रूपान्तर है और इस आधार पर किसी व्यक्ति या समाज की बुराई या न्यूनता को सीधे शब्दो में न कहकर उल्टे या टेढ़े शब्दो में व्यक्त किया जाना व्यंग्य है। बोलचाल में इसे 'ताना', 'बोली' अथवा 'चुटकी' भी कहा जाता है।

'व्यंग्यात्मक आवेश वेदों में मिल सकते हैं, किन्तु नाट्यशास्त्र में व्यंग्यात्मकता के स्पष्ट संकेत हैं।'[3] इस कथन के साथ ही डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लगभग सभी ऐतिहासिक काल-खण्डों के साहित्य में व्यंग्य की उपस्थिति को स्वीकार किया है। सिद्व, नाथ और सन्त साहित्य में व्यंग्य के उदाहरण देखे जा सकते हैं। भारतेन्दु युगीन साहित्य का व्यंग्य-लेखन काफी चर्चित रहा। मदिरा पीनेवालों, खुशामदियों, हिंसा को धर्म मानने वालों, जैन-बौद्व मतावलाम्बियों पर भारतेन्दु के व्यंग्य लेखन का उल्लेख कर डॉ. वर्मा ने सिद्व कर दिया है कि व्यंग्य-विधा भारतीय साहित्य में कोई नई वस्तु नहीं है।'[4] इसी प्रकार अंग्रेजी साहित्य में 'सटायर' लेखन की अपनी परम्परा रही है। 'सटायर' शब्द लैटिन के 'सैतुरा' से विकसित हुआ है। प्राचीन काल में 'सैतुरा' शब्द 'परनिन्दा के अर्थ में किया जाता था, जिसकी प्रतिछाया वर्तमान 'सटायर' शब्द में ध्वनित होती है। आधुनिक अर्थ में सटायर' मात्र परनिन्दा नहीं है, इसके अर्थ में वैकासिक परिवर्तन हुआ है। '--- अब 'सटायर' में केवल परनिन्दा नहीं होती, कुछ बातों में परिवर्तन होता है,

---

१. चतुर्वेदी एवं पं. तारिणीश झा (सं.), 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ', पृष्ठ-११९५
२. वामन शिवराम आप्टे (सं.), 'संस्कृत हिन्दी कोश', पृष्ठ-९८३
३. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (सं.), 'हिन्दी साहित्य कोश', पृष्ठ-८०५
४. वही, पृष्ठ-८०५

MEHTA LIBRARY

आलम्बन की खिंचाई होती है अथवा आलम्बन की तुलना घृणास्पद वस्तु से की जाती है या बात को उलट दिया जाता है, या तो उसे बातों में ही उड़ा दिया जाता है।'[1]व्यंग्य के संन्दर्भ में पाश्चात्य साहित्य में कहा गया है कि रोम में ६५ ईस्वी पूर्व के लगभग 'सैतुरेज' (Saturage) शब्द का प्रयोग अमर्यादित नाटकों के लिए होता था।[2]

परिभाषा

एक सशक्त एवं स्वतन्त्र साहित्यिक विधा के रूप में व्यंग्य साहित्य का विकास और उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा की सुदीर्घ धारा पश्चिमी साहित्य में मिलने के कारण व्यंग्य को प्राय: पाश्चात्य साहित्य की देन माना गया है। अत: पाश्चात्य साहित्य में व्यंग्य-विधा को किस प्रकार पारिभाषित किया गया है? इस पर सर्वप्रथम प्रकाश डालेगें।

पाश्चात्य दृष्टिकोण

'आक्सफोर्ड डिक्शनरी' के अनुसार- ''व्यंग्य वह पद्यमय अथवा गद्य- रचना है जिसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं का कभी-कभी कुछ अतिरंजना के साथ मजाक उड़ाया जाता है। इसका अभीष्ट किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह का उपहास करना होता है। अर्थात जो एक व्यक्तिगत आक्षेप-लेख के समान होता है।''[3]

'वैब्सटर्ड थर्ड न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी' के अनुसार- ''ऐसी साहित्यिक रचना जो मानवीय एवं व्यक्तिगत दोषों, मूर्खताओं एवं कमजोरियों, अभावों की आलोचना अथवा निन्दा, उपहास, ठिठोली, ठट्ठे, वक्रोक्ति या अन्य माध्यम द्वारा रोकती है और यह आलोचना या निन्दा कभी-कभी सुधार के उद्देश्य से की जाती है।''[4]

---

१. डॉ. राधेश्याम वर्मा, 'हिन्दी व्यंग्य उपन्यास', पृष्ठ-१

२. डॉ. बापूराव घोडू देसाई, 'हिन्दी व्यंग्य विधा: शास्त्र और इतिहास', पृष्ठ-१८

३. "A Poem or in modern use sometimes a prose composition, in which prevailing vices or follies are held up to ridicule, sometimes less correctly, applied to composition in verse or prose intended to ridicule a particular person or class of persons a lampoon." - Oxford English dictionary, volume IX , Page : 119

४. " Literary composition holding up humour or individual vias folly abuses or shortcoming to censure by means of ridicule, dersion, burlesque, irony or other method some times with an ident to bring about improvement." -Third new international dictionary - Webester, Page - 2017

'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका' के अनुसार- ''साहित्यिक दृष्टि से व्यंग्य उपहासास्पद अथवा अनुचित वस्तुओं से उत्पन्न विनोद या घृणा के भाव को समुचित रूप से अभिव्यक्त करने का नाम है, बशर्ते कि उस अभिव्यक्ति में हास का भाव निश्चित रूप से विद्यमान हो तथा उक्ति को साहित्यिक रूप मिला हो। हास्य के अभाव में व्यंग्य गाली का रूप धारणकर लेता है तथा साहित्यिक विशेषता के बिना विदूषक की ठिठोली मात्र बनकर रह जाता है।''[१]

ए. निकॉल के अनुसार- ''व्यंग्य इस सीमा तक कटु हो सकता है कि वह किंचित भी हास्यजनक न हो। व्यंग्य बहुत तीखा वार करता है। इसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता। इसमें दया, विनम्रता एवं उदारता का लेश भी नहीं होता।यह व्यक्ति के शारीरिक गठन पर कभी-कभी पूरी निर्दयता से प्रहार करता है। यह व्यक्तियों के चरित्र पर आक्रमण करता है। यह युग की समूची परिस्थितियों की धज्जियाँ किसी को भी क्षमा किए बगैर उड़ाता है।''[२]

जॉन एम. बुलिट के अनुसार- ''व्यक्तियों की मूर्खताओं और सदोषता पर किया गया साहित्यिक प्रहार चाहें वह अच्छा हो या बुरा, सामान्य हो या विशिष्ट, सत्य हो या असत्य, क्रूर हो या हास्यास्पद, गद्यमय हो या पद्यमय- सब व्यंग्य शब्द के अन्तर्गत हैं।''[३]

---

१. "Satire in its literary aspect may be defined as the expression in adequate terms of sense of amusement or disgust excited by the ridiculous or unseemly, provided that humour distinctly recognizble element and that the utterance is invested with literary form without humour satire is irvective, without literary form , it is more clourish jeering ." Encyclopedia of Britanica : Volume-20, Page :5

२. "Satire can be so bitter that it ceases to be laughable in the very vast, satire fulls heavily. It has no moral sense. It has no pity, no kindness, no magnaminity. It lashes physical appearance of person, some times with unmitigated crueltey. It attacks the character of men. It strikes at the manners of the age with a hand that spares not." An introduction to dramatic theory, new edition- " The theory of drama, page : 212

३. " Whether good or bad, general or particular, true or false, savage or humourous poetic any literary. Attack upon the vice or colly of men and manners may be contained under the general word ' Satire' ." Johanthan swift and the anotomy of satire - John M. Bullitt, Page: 39

मेरीडिथ ने लिखा है- "अगर आप हास्यास्पद का इतना मजाक उडातें है कि उसमें आपकी दयालुता समाप्त हो जाय तो आपका हास्य व्यंग्य की कोटि में आ जाएगा।"[१]

लू-शुन के अनुसार- "किसी संगठन विशेष के विभिन्न पहलुओं के तथ्यों या सत्यों के उद्घाटन का नाम है।- व्यंग्य।"[२]

भारतीय दृष्टिकोण

व्यंग्य के सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है-"व्यंग्य वह है जहाँ, कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहनें वाले को जबाव देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।"[३]

डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार- "आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तुस्थिति को विकृतकर उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।"[४]

हरिशंकर परसाई के अनुसार- "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है। जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफास करता है। अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।"[५]

डॉ. वीरेन्द्र मेहदीरता का मत है कि, "व्यंग्य, मानव-जगत की मूर्खताओं तथा अनाचारों, असंगतियों तथा विसंगतियों को प्रकाश में लाकर उनके उपहास्य अथवा घृणोत्पादक रूप पर आलोचनात्मक प्रहार करने में समर्थ एक साहित्यिक अभिव्यक्ति है। व्यापक दृष्टि से देखा जाए तो सम्पूर्ण साहित्यिक आक्रोश को व्यंग्य की संज्ञा दी जा सकती है।'[६]

---

१. " If you detect the ridicule and your kindness is chilled by it, you are slipping in to the grasp of satire. " - Idea of comedy : Meridith, Page ; 79
२. डॉ. मधुसूदन पाटिल (सं.), 'व्यंग्य विधा और विविधा', लू-शुन का लेख, पृष्ठ-५९
३. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: 'कबीर', पृष्ठ-१३१
४. डॉ. रामकुमार वर्मा: 'रिमझिम', पृष्ठ-१३
५. हरिशंकर परसाई: सदाचार का ताबीज 'कैफीयत', पृष्ठ-१०
६. डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरता, 'आधुनिक साहित्य में व्यंग्य', पृष्ठ-२३१

डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी का कथन है कि "आलम्वन के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा या भर्त्सना की भावना को लेकर बढ़ने वाला हास्य ही व्यंग्य कहलाता है।"[१]

कन्हैयालाल नन्दन का मानना है कि, "व्यंग्य आक्रोश का उबलता हुआ तूफान नहीं है, पीड़ा और आक्रोश का संयमपूर्ण सर्जन है-हॉ संयमपूर्ण सर्जन। जहाँ आदमी आक्रोश से पागल नहीं हो जाता, वह अपने आक्रोश को पिघले हुए तावे के रुप में तपाकर रचनात्मक सॉचे में ढ़ालता है, ताकि विकृति चौराहे पर नंगी खड़ी की जा सके "।[२]

डॉ. शेरजंग गर्ग के अनुसार- "व्यंग्य ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है, जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, करनी एवं कथनी के अन्तरों की समीक्षा अथवा निन्दा, भाषा को टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है; अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है। व्यंग्य में आक्रमण की स्थिति अनिवार्य है।"[3]

डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी के मत में, "व्यंग्य एक विशिष्ट समाज धमी, प्रेक्षणा-विधि अथवा एक विशिष्ट मानसिक भंगिमा है जिसका उद्‌भव अन्तर्विरोधों के कारण होता है और जिसमें व्यक्ति अथवा व्यवस्था -विशेष के दौर्बल्य की आपेक्षात्मक अभिव्यक्ति द्वारा परिवर्तन का अभीष्ट पूर्ण होता है।"[४]

व्यंग्य की निर्मिति तथा अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में शरदजोशी का मानना है कि, "जिस देश के लोग हजारों वर्षो से आक्रमण, अन्याय,अत्याचार, भूख,गरीबी, बिमारी,निराशा सहन करते हुए अपने कतिपय मूल्यों,विश्वासों और आस्थाओं से जुड़े रहे हैं। उनमें जिन्दा रहने के लिए कोई सेन्स ऑफ ह्यूमर, कोई मस्ती जरुर रही होगी। अब यदि उन्हीं मूल्यों, विश्वासों और आस्थाओं से जुड़ा साहित्य सामान्य जिन्दगी से भी जुड़ा है तो वह

---

१. डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी, 'हिन्दी साहित्य में हास्य रस', पृष्ठ-४२
२. कन्हैयालाल नन्दन, 'श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें', पृष्ठ-८
३. डॉ. शेरजंग गर्ग, 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य पृष्ठ-२८
४. डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी, 'हिन्दी का स्वातन्त्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य', पृष्ठ-५६

'सेन्स ऑफ ह्यूमर' साहित्य में आएगा ही। जो अन्याय, अत्याचार और निराशा के विरुद्ध होगें व्यंग्य में अभिव्यक्त होगा।''[१]

डॉ. मलय का मानना है कि, ''मात्र 'व्यंग्य-रूप' ऐसी गम्भीर आलोचना है जो हास्यास्पद पर बिना लाग-लपेट के सीधा प्रहार करने की अपेक्षा विशिष्टत: तिक्त परिहासवृत्ति से स्फूर्ति प्राप्त करने की योग्यता रखता है। हास्यास्पद पर किया गया उसका अपना प्रत्येक प्रहार व्यक्ति या समाज द्वारा समर्थित एवं अंगीकृत होना ही व्यंग्य की सफलता का केन्द्र बिन्दु है।''[२]

व्यंग्य के सिद्धान्त-पक्ष की चर्चा करते हुए डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा ने व्यंग्य की परिभाषा इस प्रकार दी है-''व्यंग्य लेखन में एक विषय-लक्षक शीर्षक के अन्तर्गत समीक्ष्य विषय की विविध-विसंगतियों को बौद्धिक वैदग्ध्य से संचार का आधार बनाया जाता है और उनकी विद्रूपता पर इस ढंग से प्रहार किया जाता है, कि पाठक में गहरी प्रतिक्रिया हो, जिससे वह-सामाजिक विसंगतियों से जुझने और उनसे मुक्ति पाने के लिए सोचने और कुछ करने को प्रेरित हो सके।''[3]

केशवचन्द वर्मा ने व्यंग्य को पारिभाषित करते हुए कहा है कि ''मानव व्यापार के व्यापक संन्दर्भ में जहाँ 'कथनी और करनी' का भेद सहज ही व्यंग्य को जन्म देता रहता है।''[४]

डॉ. बापूराव देसाई के अनुसार- ''व्यंग्य समाज की तत्कालीन विसंगतिपूर्ण परिवेश की वह तल्ख अभिव्यक्ति है जो प्रहार कर व्यक्ति, वस्तु तथा समाज की पोल खोलने का एक अस्त्र है।''[५]

निष्कर्षत: व्यंग्य के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि पाश्चात्य विचारक अत्यंत ही प्राचीन काल से विचारशील रहे हैं। भारतीय विद्वानों ने भी व्यंग्य के विषय में विचार किया है लेकिन यह कार्य उन्होंने हास्य रस के अन्तर्गत सीमित अध्ययन के रूप में ही किया है। व्यंग्य को स्वतन्त्र चिन्तन की भूमिका नहीं प्रदान की गई। इसके विपरीत पाश्चात्य साहित्य

---

१. शरद जोशी, 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', (अपनी बात)
२. डॉ. मलय, 'व्यंग्य का सौन्दर्यशास्त्र', पृष्ठ-१२१
३. मधुसूदन पाटिल (सं.), 'व्यंग्य विधा और विविधा', डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा का लेख, पृष्ठ-११९
४. केशवचन्द्र वर्मा, 'आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य', (भूमिका), पृष्ठ-५
५. डॉ. वापूराव देसाई, 'व्यंग्य-विधा: शास्त्र और इतिहास,' पृष्ठ-२०

-शास्त्र में व्यंग्य का पर्याप्त विश्लेषण किया गया है। यही कारण है कि व्यंग्य की परिभाषा पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है, इसलिए इसके स्वरूप पर आधारित विविध परिभाषाएँ की गई हैं। अधिकांश भारतीय विद्वानों ने व्यंग्य को हास्य के भेद-विशेष के रूप में स्वीकार किया है।उन्होंने हास्य को व्यंग्य के एक अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार करके व्यंग्य के उद्देश्य और उसकी आत्मा को नकार दिया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि की परिभाषाओं में हास्य को व्यंग्य में अनिवार्य-सा माना गया है जबकि वैब्सटर-कोश, ए. निकॉल, डॉ. शेरजंग गर्ग और डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी ने अपनी परिभाषाओं में हास्य को कोई महत्व नहीं दिया है। इनकी परिभाषाएँ अपेक्षाकृत अधिक व्यापक एवं सन्तुलित हैं। व्यंग्य मात्र एक साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वह समाज और समाज के दूषित क्रिया-कलापों के मध्य आक्रोशवश उत्पन्न होता है। उसका प्रयोजन निंदा या आलोचना के द्वारा समाज या व्यक्ति का सुधार कर उसमें परिवर्तन लाना होता है।

व्यंग्य की सोद्देश्यता, सुधारात्मक प्रवृत्ति और उसकी विशिष्टता को ध्यान रखते हुए हम कह सकते हैं कि मनुष्य एक आदिम और खतरनाक जानवर है जिसमें मूर्खतापूर्ण कार्य करने की अमर्यादित क्षमता है।अत्यधिक स्वतन्त्रता उसे अनुकूल अवसर प्रदान करती है। और वह स्वभावत: मूर्खतापूर्ण कार्यों में संलग्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में जब उसे किसी कानून का डर नहीं रह जाता है तब उसे समाज विरोधी, अवांछनीय और अनैतिक कार्य करने से रोकने के लिए 'व्यंग्य' नामक अस्त्र का प्रयोग किया जाता है।

परम्परा

हिन्दी काव्य के इतिहास में व्यंग्य प्रयोग के कतिपय उद्धरण वैदिक काल से ही प्राप्त होते हैं।ऋग्वेद के मंत्रो में जन-कल्याणार्थ पूषन से की गई प्रार्थना में कंजूसों और लोभियों पर निर्मम व्यंग्य किया गया है। इसी प्रकार चार्वाक् का वस्तुवादी भौतिक दर्शन तत्युगीन कर्मकाण्ड प्रधान ब्राह्मण धर्म के श्राद्ध संस्कारों पर परोक्ष व्यंग्य ही था। वैदिक साहित्य के उपरान्त 'रामायण' तथा 'महाभारत' में अधिक व्यंग्य-सर्जना हुई है। रामायण की अपेक्षा 'महाभारत' में व्यंग्य-अभिव्यक्ति के अधिक प्रसंग है। इसका कारण तद्युगीन राजनैतिक षड्यन्त्र एवं युद्धों की कूटनीति है।

संस्कृत साहित्य के सभी आचार्यो ने व्यंग्य को ध्वनि के अन्तर्गत रखा है। शब्द-शक्तियों की व्यंजना-शक्ति के द्वारा व्यंग्यार्थ की प्रतीति होने के कारण ही संभवतः आचार्यो ने व्यंग्य को ध्वनि कहा होगा। महाकवि कालिदास-कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' तथा 'विक्रमोर्वशीय' में विदूषको के माध्यम से व्यंग्य-सृष्टि की गई है। विदूषक व्यंग्य प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त होते थे और हास्य की लपेट में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने के कारण 'नर्म सचिव' कहलाते थे। संस्कृत नाट्य-परम्परा में शूद्रक-कृत 'मृच्छकटिकम्' में सामाजिक वैषम्य से सम्बद्ध व्यंग्य उपलब्ध होते हैं। महाकवि भवभूति-कृत 'उत्तर रामचरित' में लक्ष्मण, लव-कुश संवादों में राम-चरित्र के अन्तर्विरोध व्यंग्य-रूप में उभरकर सामने आये हैं।

संस्कृत काव्य-शास्त्र के आचार्यो ने काव्य-चर्चा के सन्दर्भो में व्यंग्य-व्यंजना प्रस्तुत की है। इन आचार्यो ने सर्वोच्च अर्थ के रूप में व्यंग्यार्थ को ही काव्य की आत्मा माना है। आनन्दात्मक पीड़ा या आधारात्मक संवेदना के धरातल पर इसका प्रयोग होता है। जहाँ इसका उपयोग पीड़ामूलक संवेदना को उत्तेजित करने के लिए किया जायेगा वहाँ व्यंग्य अपना स्थान बना लेगा। व्यक्ति द्वारा किये गये छल, प्रपंच जैसे धृणित कार्यो से भुक्तभोगी व्यक्ति को पीड़ा होगी किन्तु जैसे ही उसका छल खुलेगा वैसे ही उस प्रवंचक के प्रति जो भाषा व्यक्त होगी उसमें आक्रोश, प्रहार, प्रतिकार और विरोध जैसे गुण सहज ही आ जायेंगे। आक्रोशात्मक मनोदशा की सहज स्थिति में प्रतिकारपरक भाषा व्यंग्योन्मुख हो जाएगी।

नाट्यशास्त्र के आदि आचार्य 'भरत-मुनि' ने हास्य के निम्नांकित कारणों की ओर संकेत किया है-

'विपरीतालंकारैः विकृताचाराभिधान वैषैस्य।
विकृतैरर्थविशेषैर्हसतीति रसः स्मतो हास्यः।।'[1]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भरत ने आकार, वेश, आवरण, अभिधान, वाणी और अलंकारादिगत विकृति को ही हास्य का मूल कारण माना है। इसी प्रकार दूसरों के विकृत-वेश, आभूषण, भ्रष्टता, चपलता का नटन्, दूषित प्रलापन, व्यंग्य-दर्शन और दृष्टि-दोष आदि हास्य के कारण हैं।[2]

---

१. भरतमुनिः 'नाट्य-शास्त्र', पृष्ठ-१३४

२. वहीं, अध्याय-६

धनंजय और सागरानंद ने विकृति को भामह, रुद्रट और राजशेखर ने अंलकार और वक्रोक्ति तथा अभिनव गुप्त ने अनौचित्य या रसाभास को हास्य का मूल कारण माना है। इन काव्याचार्यों ने हास्य उत्पादन के मूल कारणों की अनेक प्रकार से विस्तृत और व्यापक चर्चा की है। हास्य के सम्बन्ध में सूत्रात्मक रूप से विवेचित उनके विधानों के मूल में व्यंग्य-विमर्श का सूक्ष्म संकेत मिल जाता है।

ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन की व्यंग्य-विधा के सन्दर्भ में यह धारणा रही है कि "काव्यं ध्वनिर्गुणीभूत व्यंग्य चेतिद्विधा मतम्।

वाच्यातिशायिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुन्तमम्।"[1]

अर्थात् 'काव्य' यानि साहित्य-भेद में जो अर्थ अभिव्यंग्य रूप से अवस्थित रहा करता है वह इतना सुन्दर, इतना चमत्कारजनक प्रतीत हुआ करता है कि यहां का वाच्यार्थ उसके सामने फीका लगने लगता है। यही वह कविकृति है जिसमें वह अर्थ ध्वनित हुआ करता है जिसका सौन्दर्य वाच्चार्थ की पहुँच के परे रह जाता है। आचार्य वामन की व्यंग्य के सन्दर्भ में यह धारणा रहीं है- 'सादृश्यालक्षणा वक्रोक्तिः' अर्थात् वक्रोक्ति के द्वारा व्यंजना का संकेत। आचार्य वामन रीतिवादी परम्परा के जनक रहे हैं, जिन्होने व्यंग्य का युक्ति-संगत और गम्भीर विवेचन किया है।

प्राचीन काव्य-शास्त्र में व्यंग्य के सन्दर्भ में स्पष्ट-रूप से कुछ नहीं कहा गया है, किन्तु तद्युगीन हास्य एवं प्रहसनात्मक साहित्य में प्राप्त विदूषक, विट, चेट, शठ एवं धीरोद्धातादि जैसे पात्र वक्रोक्ति, वचन वैदग्ध्य, उपालंभ, असत्य प्रलाप आदि जैसे वाणी-भंगिमा के विविध रूपों से युक्त संवाद या कथोपकथन, घृणा, निन्दा और हास्यास्पद आलम्बन विषय के साथ ही साथ उन्हें प्रस्तुत करनेवाली तद्नरूप आयोजन पद्धति तथा अमंगलकारी तत्वों पर सुन्दर और सत्य वस्तु की विजय दिखलाने का उद्देश्य आदि जैसे दृष्टिकोण, व्यंग्य के स्वरूप, तत्व, लक्षण और भाषा की ओर अप्रत्यक्ष रूप से इंगित करते हैं।

'पंचतन्त्र' नामक कथा-संकलन के वृहद्कोश में अनेकानेक व्यंग्य-परक लघु कथाएं है। जिनमें तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन की विडम्बनाओं का व्यंग्यात्मक चित्रण हुआ है।

---

१. आचार्य मम्मट: 'काव्य मीमांसा,' द्वितीय अध्याय।

प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में भी व्यंग्य मिलते है। व्यंग्य विकास की दृष्टि से प्राकृत साहित्य में उपलब्ध बौद्धों के चर्यापद व दोहाकोश उतने उपयोगी नहीं है जितने अपभ्रंश साहित्य में सिद्ध साधकों का साहित्य। सिद्ध और जैन साहित्य में खण्डनात्मक रुप में व्यंग्य मिलता है। कण्हपा और सरहपा इत्यादि सिद्धों ने तत्कालीन ब्राह्मण धर्म के पाखण्डों, धार्मिक वाह्याचरणो, भस्मावत्त योग साधकों, कोरे पुस्तकीय ज्ञानियों इत्यादि धार्मिक एवं सामाजिक विसंगतियों पर खुलकर व्यंग्य प्रहार किया है। अपभ्रंश भाषा के महाकवि चन्द वरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' के महाकाय कलेवर में कई उच्चकोटि के व्यंग्य-उद्धरण उपलब्ध होतें हैं।

प्राचीन साहित्य की प्रवृत्तियों का प्रभाव भक्ति साहित्य पर पड़ा। भक्तिकाल में कबीर ने वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों को व्यंग्य द्वारा निरस्त कर जीवन के उच्च आदर्शो की स्थापना का प्रयास अवश्य किया है। व्यंग्य का सर्वप्रथम प्रामाणिक व सोद्देश्य प्रयोगकर्ता कबीरदास ही है। कबीर ने समकालीन धार्मिक व्यवस्थाओं के आडम्बरों पर तीखा व्यंग्य किया है। इस प्रकार सम्पूर्ण निगुर्ण काव्य-धारा व्यंग्य-व्यंजना से ओत-प्रोत है। कालान्तर में सगुण-भक्ति काव्य-धारा का विकास हुआ जो दो पक्षीय थी। प्रथम परम्परा में रामकाव्य परम्परा के वर्चस्वी कवि गोस्वामी दुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' तथा 'कृष्ण गीतावली' में अनेक व्यंग्योक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। गोस्वामी जी दुष्टों की 'वंदना' करते हैं और 'गालबजाने' वाले पण्डितों को दूर से ही नमस्कार करते है। द्वितीय परम्परा के अन्तर्गत कृष्ण-काव्य परम्परा के श्रेष्ठ कवि सूरदास कृत 'सूरसागर' के दशम-स्कन्ध का 'भ्रमरगीत' प्रसंग पूरा का पूरा सगुण-निर्गुण साधना के खण्डन-मण्डन के प्रसंगो का अत्युच्च व्यंग्य है। गोपी-उद्धव संवाद प्रसंग में गोपियों ने बहुत ही तीखे व्यंग्य प्रहार किये हैं। नन्ददास की गोपियों ने भी बेचारे उद्धव की ज्ञान-गरिमा पर कटु प्रहार किये है। गोस्वामी तुलसीदास के व्यंग्य में मानवीय चरित्रों की दुर्बलता उद्घाटित हुई है, जबकि सूरदासजी ने प्रेम को आधार बनाकर व्यंग्य की समर्थ अवतारणा की है।

रीतिकालीन कवियों की रचनाओं में भी कहीं-कहीं व्यंग्योक्तियों की झलक मिलती है, किन्तु इन काल-खण्डों का व्यंग्य किसी उच्च आदर्शो को लक्ष्य करके नहीं किया गया है, अपितु व्यक्तिगत पक्षो को पुष्ट करने या उचित ठहराने की दृष्टि से खण्डनात्मक या निन्दात्मक रुप से रचा गया

है। आचार्य कवि 'केशव दास' कृत 'राम चन्द्रिका' का अंगद-रावण संवाद तथा 'लवकुश'-अंगद संवाद, महाकवि बिहारीलाल कृत 'सतसई' तथा स्वच्छन्द कवि घनानन्द के काव्य में भी व्यंग्य की लाक्षणिक शक्ति का चमत्कार देखने को मिलता है। इसी युग में कुछ विशिष्ट प्रकार की कविताओं की ब्रज भाषा में रचना हुई जन्हें 'भड़ौवा' अर्थात-उपहासपूर्ण निन्दा-काव्य कहा गया है। इन काव्यों में प्राय: आश्रयदाता नरेशों की कंजूसी आदि पर व्यंग्य प्रहार होते थे। इसी युग के नीतिवादी काव्यों में भी व्यंग्य की उच्चकोटि की व्यंजना दृष्टिगोचर होती है। दीन दयाल गिरि और गिरीधर कविराय का काव्य इसका अकाट्य प्रमाण है।

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य की अविच्छिन्न परम्परा का विकास भारतेन्दु युग में ही हुई। व्यंग्य भारतेन्दु-युगीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति तथा मूल स्वर है। कारण, व्यंग्य विसंगतियों की भूमि में ही जन्मता है। व्यक्ति, देश, समाज और राष्ट्र के जीवन में जैसे-जैसे विसंगतियाँ बढ़ती जाती हैं, वैसे-वैसे व्यंग्यकार को व्यंग्य लेखन के लिए अधिकाधिक उर्वरा भूमि प्राप्त होती जाती है। भारतेन्दु युग अनेक प्रकार की विसंगतियों का युग था। इस युग के साहित्यकारों ने तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन की विसंगतियों को लक्ष्यकर समाज-सुधार और देशोद्धार की कामना से अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय जनता में राष्ट्रीय तथा जन-जागरण सम्बन्धी चेतना जाग्रत करने का भरसक प्रयास किया। साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना और जन-जागरण उत्पन्न करनें में जितना योग भारतेन्दु युग के लेखकों की रचनाओं से मिला, उतना पूर्ववर्ती रचनाकारों के सामूहिक, प्रयत्नों से भी सम्भव नहीं हुआ था।[१] भारतेन्दु ने आल्हा, मुकरी, दोहा, गजलों, स्यापों के माध्यम से समकालीन देश की आर्थिक अव्यवस्था और राजनीतिक शोषण के विरूद्ध अत्युच्य व्यंग्य की रचनाएँ प्रस्तुत की। इसी युग के पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. प्रतापनारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी तथा बालमुकुन्द गुप्त आदि सभी ने अपने समय की विभिन्न विसंगतियों के प्रति अपने हृदय के आक्रोश को व्यक्त करते हुए पद्य और गद्य सभी विधाओं के माध्यम से बड़े तीखे और मार्मिक व्यंग्य प्रहार किये। ''मानसिक अवत्थान की दृष्टि से देखा जाए तो

१. डॉ. मधुसूदन पाटिल (सं.), 'व्यंग्य विधा और विविधा', डॉ. आनन्द गौतम का लेख, पृष्ठ-१६-१७

यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन लेखकों के मन में एक घुटन थी और वह चाहती थी, निकलना; ब्रिटिश शासन से निकलना। ब्रिटिश शासन में खुशामदियों का बोलबाला था, धार्मिक ठेकेदारों की तूती बोलती थी, प्रेस एक्ट का भूत हरदम सिरपर सवार रहता था। हास्य एवं व्यंग्य के सहारे उन लोगों ने अपने मन का असन्तोष प्रकट किया।''[1]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का युग, व्यंग्य साहित्य-सृजन की दृष्टि से अत्यंत ही समर्थ काल है। यद्यपि इस युग में भारतेन्दु युगीन व्यंग्य का तीखापन उपलब्ध नहीं होता फिर भी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से व्यंग्य को विकसित होने का प्रभूत प्रमाण प्राप्त होता है। इस ''युग तक व्यंग्य के लक्ष्य प्रधानतः धार्मिक, असहिष्णुता, पण्डित, शेख, मौलवी, पाखण्ड, मानवीय दुर्बलताएँ (ईष्या, क्रोध, लोभ-काम, अहंकार), आश्रयदाताओं की कंजूसी, नीम-हकीम, कर्कशा नारी, बैद्य, रिश्वत, कचहरी के मुंशी, अंग्रेजी शासन, टैक्स, महँगी फैशनप्रियता, तत्कालीन शिक्षा-पद्वति, मुकदमेबाजी का शौक, तथाकथित कवि, बाल-विवाह, साधुओं का नशा प्रेम, म्यूनिस्पैलिटी, कूपमण्डूकता आदि रहे।''[2] द्विवेदी युगीन कविता में एक और उल्लेखनीय परिवर्तन यह हुआ है, कि उसमें व्यंग्य ने हास्य को अपने से अलग कर दिया। पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करनेवाले उन भारतीय साहबों पर जो देहाती रक्त के होते हुए भी पाश्चात्य साहबी का प्रदर्शन करना चाहते है, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने तीखे व्यंग्य किये हैं। इस युग के उल्लेखनीय व्यंग्य लेखकों में पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', नाथूराम शंकर, ईश्वरी प्रसाद शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के अतिरिक्त अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि प्रमुख है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने विचारात्मक एवं भावात्मक निबन्धों में व्यंग्य-व्यंजना का सुन्दर प्रयोग किया है। आचार्य शुक्ल का व्यंग्य गम्भीर व तिलमिला देने वाला होता है। उन्होंने अपने निबन्धों में प्रसंगानुकूल समकालीन सामाजिक परम्पराओं व प्रवृत्तियों, विदेशी साहित्य का अंधानुकरण, साहित्यकारों की कोरी कल्पनाओं, भाषा-सम्बन्धी दुर्बलताओं पर व्यंग्य-प्रहार किया है। 'चिन्तामणि' के भाग प्रथम व द्वितीय में इसके

---

१. डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी, 'हिन्दी साहित्य में हास्य-रस', पृष्ठ-९९

२. डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी, 'आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य,' पृष्ठ-६०

उदाहरण मिलते हैं। ''यह ठीक है कि शुक्ल जी ने केवल उन्हीं स्थलों पर व्यंग्य का आश्रय लिया है जहाँ किसी कवि, लेखक या आलोचक के मत से वे सहमत नहीं हो सके अथवा उनका तर्कसंगत न होने के कारण उन्हें स्वीकार्य नहीं हो सका है, फिर भी उनका व्यंग्य प्रायः सर्वत्र शिष्ट, गम्भीर और पाण्डित्यपूर्ण ही है।''[१]

छायावादी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के काव्य और गद्य दोनों में प्रभूत मात्रा में व्यंग्य अभिव्यक्त हुआ है। इनके 'सरोज स्मृति' जैसे शोक-गीत में तीखे व्यंग्य का प्रयोग हुआ है। निराला ने व्यंग्य के माध्यम से पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा और सामाजिक परिवेश की रूढ़िवादी नैतिकता को चुनौती दी। निराला का स्वाभिमान और उनका स्वतन्त्र परिवेश उनकी साधना का सूत्र था। इसलिए जीवन-भर क्रूर यातनाओं का साक्षात्कार करने के उपरान्त भी उन्होंने विषमताओं से समझौता नहीं किया; यही कारण है कि, उनके स्वर में विडम्बनाओं के प्रति आक्रोश, पूँजीपतियों के विरूद्ध प्रतिक्रिया व सामान्य जनों के प्रति हार्दिक सहानुभूति की ध्वनि गुंजित होती है। 'कुकुरमुत्ता' उनकी सर्वाधिक चर्चित व्यंग्य कविता है। इनके व्यंग्य में तीखापन एवं सारगर्भिता निहित है। निराला ने 'मतवाला' और 'सुधा' पत्रिका में अत्युच्च कोटि के व्यंग्यात्मक निबन्धों की रचनाएँ की। जयशंकर प्रसाद की कृति 'कामायनी में व्यंग्य-व्यंजना की गम्भीरता के दर्शन होते है। 'कामायनी' के प्रथम सर्ग में 'चिन्ता' को 'विश्ववन की व्याली'[२] कहकर चिन्ता पर सटीक प्रहार किया गया है। इसी प्रकार सुमित्रानन्दन 'पंत' और महादेवी वर्मा की रचनाओं में भी व्यंग्य की अभिव्यंजना उपलब्ध होती है। छायावादोत्तर साहित्य में व्यंग्य का श्रेष्ठ व उत्तम प्रयोग करने वालों में आचार्य श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का शीर्ष स्थान है। अपने निबन्धों में "एक ओर द्विवेदी जी ने राजनीतिज्ञों के गुरुडम स्वार्थ-संघर्ष और अपने चतुर्दिक वातावरण में व्याप्त संक्रामक मूल्यहीनता पर तीव्र कशाघात किया हैं, दूसरी और सामान्य जनता की अशिक्षा, अंधविश्वास और धर्म के ठेकेदारों के आडम्बरों एवं मिथ्याचारों की भी व्यंजनात्मक शैली में आलोचना की है।''[३] द्विवेदी जी ने 'अशोक के फूल' कुटज, कल्पलता

---

१. प्रेम नारायण टण्डन (सं.),'हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य,'पृ.४२४
२. प्रसादः 'कामायनी', पृष्ठ-५
३. प्रेम नारायण टण्डन (सं.),'हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य,'पृ.४२४

आदि निबन्ध-संग्रहों में शुष्क पुस्तकीय ज्ञान, युगीन स्वार्थपरायण, उपयोगितावादी मनोवृत्ति व उच्छवसित भावुकता, आधुनिक राजनेताओं की पदलिप्सा, नैतिक पतन, समझौतापरस्त प्रवृत्ति, विश्व की बढ़ती हुई हिंसक अस्त्रों की होड़, समकालीन साहित्यकारों के चिन्तन के स्वरूप, विदेशी भाषा और साहित्य के प्रति अन्धमोह, वर्तमान शिक्षा पद्धति व सदैव उदासीन बने रहने वाले लोगों की विकृतियों पर धारदार व्यंग्य किये हैं।

'स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् से तो साहित्य की विविध-विधाओं में व्यंग्य की विशेष प्रतिष्ठा दिखाई देती है। कारण, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस देश में विसंगतियों का जितना तीव्र दौर चला, उतना इससे पहले कभी नहीं था। स्वतंन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारतवासियों ने स्वतन्त्र भारत के जो सपनें संजोये थे, स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही वह तेजी से चूर-चूर होते चले गये। जिसके भी हाथ में सत्ता और अधिकार पहुँचे, उसने उनका स्वार्थ हित में प्रयोग किया। अपना घर जोड़ने की कला ने सभी को स्वार्थान्ध बना दिया। वर्तमान में स्थिति यह है कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक विसंगतियाँ हमारे चारों और मुँह बाये खड़ी हैं, जिन्होंने व्यक्ति और समाज के तमाम आदर्शो, नैतिक मूल्यों और मान-मर्यादाओं को पूरी तरह निगल लिया है। आजादी के बाद यहाँ बहुविध विसंगतियों का ऐसा दौर चला, जिसमें दिग्गज बह गये। चारों तरफ अनाचार, अत्याचार, पाखण्ड और भ्रष्टाचार का बोलवाला होता चला गया। यहीं सब स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य मे व्यंग्य की प्रधानता का प्रमुख कारण है।''[१] दूसरा कारण है 'आधुनिकता-बोध'। ''आधुनिकता-बोध शुरू ही होता है एक तटस्थ और निर्मम प्रश्नाकुलता से। प्रत्येक पूर्व और स्वीकृत मान कटघरे में खड़ा कर दिया जाता है। समाज और व्यक्ति, आदर्श और यथार्थ, व्यक्ति स्वातन्त्र्य और जनहित के बीच गहरा द्वन्द छिड़ गया है और मनुष्य इस संघर्ष से छुटकारा पाने के लिए जिन सीधी राहों की खोज कर रहा है वे राहें उसके पाँव की जंजीर बनती जा रही हैं। तब वह बाहर न देखकर भीतर देखता है। वह खोंखले आदमी के भीतर झाँकता है, क्योंकि वह महसूस करता

---

१ डॉ. मधुसूदन पाटिल (सं.), 'व्यंग्य विधा और विविधा',
डॉ. आनन्द गौतम का लेख।-पृष्ठ-१७

कि खोखलेपन को स्वीकार किये बिना मुक्ति नहीं है। यह बोध उसे व्यंग्यशील बना देता है। इस कारण ने साहित्य की प्रत्येक विधा को व्यंग्यमय बनने के लिए विवश कर दिया है।''[1]

सारांश यह है कि व्यंग्य में अपने युग के वर्तमान के प्रति निराशा, अनास्था, दिग्भ्रम एवं कुंठित मनोवृत्ति की तीव्र प्रतिक्रिया होती है। जो आंशिक रूप में ही सही, तत्कालीन साहित्य में अपनी उपस्थिति का आभास देती रही है। इन व्यंग्यों में जीवन की घुटन और तद्जनित अनास्था का अहम् झंकृत होता है। परम्परा के प्रति अन्धमोह और नवीनता के आकर्षण में बंधने की उत्कट अभिलाषा ही विरोधाभास उत्पन्न करती है जो अन्त में व्यंग्य का लक्ष्य बन जाती है। अत: आनन्द गौतम के शब्दों में कह सकते है; कि 'व्यंग्य का सीधा सम्बन्ध असंगत, भ्रष्ट अथवा तर्कहीन जीवन-मूल्यों से समझौता न कर पानेवाली कवि या लेखक की उस अर्न्तदृष्टि से है, जो मानव को विचार और व्यवहार के धरातल पर संतुलित और समंजित देखना चाहती है। लेखक की इसी दृष्टि ने स्वाधीन भारत में तेजी से पनपने वाली विसंगतियों को लक्ष्य कर अनेक व्यंग्य कविताओं, व्यंग्य उपन्यासों, व्यंग्य कहानियों, व्यंग्य नाटकों, व्यंग्य ऐकांकियों और व्यंग्य निबन्धों की रचना की।''[2] आज हिन्दी के व्यंग्य-रचनाकारों की एक लम्बीं और सुविकसित परम्परा है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रविन्द्रनाथ त्यागी, केशवचन्द्र वर्मा, श्रीलाल शुक्ल, नरेन्द्र कोहली, के.पी. सक्सेना, लतीफ घोंघी, डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी, शंकर पुणतांबेकर, डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, डॉ. सुदर्शन मजीठिया, प्रेम जनमेजय आदि इस परम्परा के प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

लक्षण एवं विशेषता

व्यंग्य की सुनिश्चित एवं परिनिष्ठित स्वरूप उपलब्ध न होने के कारण इसके तत्वों एवं लक्षणों के सम्बन्ध में भी विद्वान एक मत नहीं हैं। चूँकि विभिन्न व्यंग्यकारों की रचनाओं में उनकी व्यक्तिगत विशेषताएँ भी प्रतिबिम्बित होती हैं, इस कारण सें उन्होंनें व्यंग्य के सम्बन्ध में परिभाषाओं

---

१ डॉ. मधुसूदन पाटिल (सं.), 'व्यंग्य विधा और विविधा',
-डॉ. विद्यानिवास मिश्र का कथन: पृष्ठ-१८

२. वहीं, पृष्ठ-१८

के रूप में अपने-अपने भिन्न विचार व्यक्त किये है। इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने के उपरान्त हमें व्यंग्य के निम्नलिखित लक्षण दृष्टिगत होते हैं-

१. 'व्यंग्य' प्रबुद्ध मन की बौद्धिक क्रिया है।

२. 'व्यंग्य' अन्तर्मुखी होता है।

३. 'व्यंग्य' में आलोचना होती है।

४. 'व्यंग्य' में आक्रोश और अचूक प्रहार होता है।

५. 'व्यंग्य' की अभिव्यक्ति हास्य, अन्योक्ति, वक्रोक्ति, वैदग्ध्य तथा भाषा की वक्र भंगिमा द्वारा होता है।

६. इसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं का मज़ाक उड़ाया जाता है।

७. इसमें सत्य का उद्घाटन और अनैतिकता का अभाव होता है।

८. सुधार करने के उद्देश्य से प्रेरित होता है।

विभिन्न भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दिये गये व्यंग्य के परिभाषाओं के आधार पर व्यंग्य के विशेषताओं को भी स्पष्ट किया सकता है। यथा-

१. 'गागर में सागर' अर्थात् कम-से-कम शब्दों में बहुत अर्थ प्रदान कर देने की क्षमता इसमें होती है।

२. 'नावक के तीर' अर्थात् व्यंग्यकार अपने लक्ष्य पर नावक के तीर समान अचूक, सार्थक और सशक्त प्रहार करता है।

३. सत्यनिष्ठ अर्थात् व्यंग्य में कटु सत्य होता है, अतः इसमें कल्पना, असत्य आदि के लिए कोई स्थान नहीं रहता।

४. सोद्देश्यता-व्यंग्य सुधार के उद्देश्य से प्रेरित होकर लिखा जाता है।

५. प्रभावी शस्त्र-अपराधी जब अपनी चालाकी और धूर्तता से बच जाते हैं और न्यायालय उन्हें दण्ड नहीं दे पाता तो उन पर व्यंग्य का प्रयोग प्रभावी शस्त्र के रूप में किया जाता है।

६. चिर-प्रभाव : अन्य विधाओं की अपेक्षा इसका प्रभाव आलम्बन पर अधिक समय तक रहता है।

७. विकृतियों का पर्दाफासः व्यंग्य-संसार के सभी दोषपूर्ण आलम्बन की पोल खोलता है।

८. समाजाभिमुखताः व्यंग्य में जो भी पर्दाफास किया जाता है, वह समाज के हित में होता है, क्योंकि समाज के दोंषो को दूर करना व्यंग्य का कर्तव्य है।

९. गम्भीरताः व्यंग्य में केवल कोई हँसी-मजाक, विनोद पूर्ण विषय नहीं होता है, प्रत्येक विषय-व्यंग्य में समाज-स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए गम्भीरता से लिया जाता है।

१०.सहज भाव तथा उत्स्फूर्तताः किसी वस्तु या विषय पर सहज भाव एवं उत्स्फूर्तता से व्यंग्य किया जाता है।

अतः कहा जा सकता है, कि 'व्यंग्य' आधुनिक युग की वह विसंगति पूर्ण अभिव्यक्ति है जो थोड़ें ही समय में पाठक को जीवन की सद्यः परिस्थिति से अवगत करा देता है। इसका लक्ष्य किसी छोटे से प्रसंग या घटना को लेकर विसंगति पर प्रहार करना होता है। जीवन के किसी तथ्य का उद्घाटन व्यंग्य में सीधा न होकर वक्रोक्तिपूर्ण होता है, जो जीवन के द्वन्द, युग-सत्य, तीखा, दंश आदि को रेखांकित करने के साथ ही समसामयिक यथार्थ को लेकर पाठक को तिलमिला देने वाली एवं उसके रग-रग को छू देने वाली भी होती है। यह हमारे अनुभूति का विषय बनकर ताना कसता है, चुटकी लेता है, विकृति को हटाना चाहता है, व्यंग्य का उद्देश्य उपकारी और गम्भीर होता है जो न्याय की पुकार करता हुआ आगे बढ़ता है। व्यंग्य की भाषा, वचन वैदग्ध्य,वक्रोक्तिपूर्ण निन्दा, उपालम्भ, कटु उपहास आदि का सहारा लेकर अपने लक्ष्य को पूरा करती है।

व्यंग्य के भेद

व्यंग्य की व्यंजना-शक्ति जीवन की विद्रूपताओं और विसंगतियों की अभिव्यक्ति करने के कारण इतनी सूक्ष्म और विशद् होती है, कि उसे वर्गीकरण जैसी स्थूल रेखाओं में विभक्त करना अत्यन्त ही कठिन है। व्यंग्य की प्रकृति गिरगिट की तरह अनेक रंग बदलती हुई होने की वजह से विद्वानों के द्वारा वर्गीकृत उसके प्रभेदो में प्रायः एकरूपता का प्रभाव ही दृष्टिगत

होता है। पश्चिमी विद्वानों की भाँति 'व्यंग्य' को हास्य के प्रभेद के रूप में देखने वाला एक वर्ग व्यंग्य को हास्य के विविध-रूप विनोद, व्याजोक्ति वाग्वैदग्ध्य, ताना, उपहास, विद्रूपिका आदि के रूपों में देखता रहा है। परन्तु 'हास्य' शरीर की स्थूल क्रियाओं से सम्बद्ध होने के कारण वाह्य क्रिया है, जबकि 'व्यंग्य' मन की आन्तरिक दशा पर प्रभाव डालता है, इसलिए व्यंग्य को वर्गीकरण की सीमाओं में बाँधना अपेक्षाकृत कठिन कार्य है।

व्यंग्य की रचना, कभी-कभी प्राप्त होने वालीं प्रेरणा के आधार पर की जाती है। इस आधार पर रचित होने वाली व्यंग्य की सृष्टि वैयक्तिक भी होती है तथा निर्वैयक्तिक भी। वैयक्तिक व्यंग्य-रचना में व्यंग्य की आक्रमण मूलक दृष्टि निकतम् सम्बन्धियों अथवा व्यक्ति-विशेष को लक्ष्य बनाकर उन पर प्रत्यक्ष और सीधा प्रहार करती है।निर्वैयक्तिक व्यंग्य व्यक्ति के स्थान पर परिवेश को अपना केन्द्र बनाता है। यहाँ पर व्यंग्य का क्षेत्र व्यापक हो जाता है और वह व्यक्ति से हटकर अपना लक्ष्य सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवेश और उनसे जुड़ी हुई स्थितियों की असंगतियों को बनाती है। ऐसी स्थिति मे व्यंग्य परिवेश की विद्रूपताओं को मुखरित करने में सफल होता है।

प्रभाव के आधार पर भी व्यंग्य के भेद को स्थापित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में अध्ययन की प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रभाव को आधार बनाया जाता है। व्यंग्य द्वारा पाठक, प्रेक्षक अथवा श्रोता समुदाय पर प्रतिक्रिया किस रूप में हो रही है? यह अध्ययन का लक्ष्य होगा। इस प्रकार की अभिव्यक्ति में व्यंग्य हासयुक्त,वक्रोक्तिपूर्ण, वाग्वैदग्ध्य, प्रत्युत्पन्नमतित्व से अलंकृत होता है। व्यंग्य कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति करता है तथा उसका बोध करता है। ऐसी परिस्थितियों में व्यंग्य करूण हो जाता है।

डॉ. शेरजंग गर्ग ने व्यंग्य की प्रेरणा और प्रभाव के आधार पर व्यंग्य का विभाजन किया है। उनके द्वारा वर्गीकृत व्यंग्य-भेद की तालिका इस प्रकार है -

"व्यंग्य के प्रकार

- प्रेरणा का आधार
  - वैयक्तिक
    - आत्मस्थ
    - परस्थ
  - निर्वैयक्तिक
    - राजनैतिक, सामाजिक; आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों पर अथवा इन स्थितियों की विडम्बना को उभारने वाला व्यंग्य।
    - दैवी एवं नियति की दारूणता को दर्शाने वाला व्यंग्य।
- प्रभाव का आधार
  - हास्य से युक्त व्यंग्य
  - कटु यथार्थ से युक्त व्यंग्य
  - करूण व्यंग्य"[1]

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि डॉ. गर्ग ने प्रेरणा के आधार पर व्यंग्य को वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक जैसे दो रूपों में वर्गीकृत किया है।

वैयक्तिक व्यंग्य व्यष्टिपरक चेतना की अभिव्यक्ति करता है। इसमें किसी व्यक्ति-विशेष के गुण-दोष, त्रुटियों, विसंगतियों तथा असमानताओं पर कटु प्रहारात्मक दृष्टि से आक्रमण किया जाता है। यह व्यक्ति विशेष का उपहास उड़ाता है। फिर यह आत्मस्थ और परस्थ व्यंग्य को जन्म देता है। आत्मस्थ में उत्पन्न अन्तर्विरोधों पर प्रहार स्वयं को लक्ष्य करके किया जाता है। इसके अन्तर्गत व्यंग्यकार जीवन की विषमताओं एवं व्यक्तिगत विरोधपूर्ण मनः स्थितियों का व्यंग्यात्मक चित्रण करता है। परस्थ व्यंग्य की रचना में किसी व्यक्ति-विशेष के लक्ष्य बनाया जाता है। व्यंग्य के आक्रमण का लक्ष्य विशिष्ट स्तर का कोई व्यक्ति होता है। रचनात्मकता की दृष्टि से इस प्रकार के व्यंग्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है

१. डॉ. शेरजंग गर्ग, 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य', पृष्ठ-६९

कि इसमें व्यंग्यकार से अत्यन्त ही उच्चकोटि की नैतिकता, सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता एवं व्यापक दृष्टि की अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार के व्यंग्य छद्म नहीं होते, बल्कि जिस पर व्यंग्य प्रहार करने होते हैं उसके समक्ष ये अपनी पूर्ण पृष्ठभूमि के साथ अभिव्यंजित होते हैं। इस प्रकार के व्यंग्यों की रचना में रचनाकार की पूर्ण तटस्थता अनिवार्य रूप से अपेक्षित होती है।

निर्वैयक्तिक व्यंग्य को भी डॉ. गर्ग ने दो प्रकारों में विभक्त किया है- (१) राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों पर अथवा इन स्थितियों की विडम्बना को उभारने वाला व्यंग्य, और (२) दैवी एवं नियति की दारूणता को दर्शाने वाला व्यंग्य। निर्वैयक्तिक व्यंग्य का लक्ष्य राजनैतिक व्यंग्यों की रचना के द्वारा सत्ता की आरोपित व्यवस्था, भ्रष्ट प्रशासन, दल-बदलू राजनेताओं के दुराचारी चरित्र इत्यादि को उजागर करके उस पर प्रहार करना होता है। सामाजिक व्यंग्यों में सामाजिक स्थिति की विसंगतियों जैसे, दूषित जातीय-व्यवस्था, द्वेषपूर्ण असमानता, ऊँचनीच, वैभव-विलासिता व दरिद्रता की परिस्थितियाँ इत्यादि व्यंग्य के लक्ष्य होते हैं। इसी व्यंग्य के विस्तृत भूमिका में आधुनिक वर्ग-संघर्ष, पूँजीवादियों का शोषण-चक्र और पिसता हुआ श्रमिक तथा अन्य वर्गो के दयनीय अवस्था के व्यंग्यों की गणना होती हैं। धार्मिक व्यंग्य की सर्जना धार्मिक आडम्बरों, धर्माधिकारियों के पाखण्डपूर्ण निष्ठा-प्रदर्शन आदि प्रसंगों की असमानताओं पर की जाती है। इन व्यंग्यों में व्यक्ति नहीं, व्यवस्था का दोष होता है। निर्वैयक्तिक स्थिति में व्यंग्य ऐसी अभिव्यक्ति करने में भी सफल होता है जिसमें नियति तथा दैवी विपत्ति की दारूणता को अभिव्यंजित करने वाला भाव होता है।

व्यंग्य के वर्गीकरण का द्वितीय आधार उसके प्रभावों की प्रतिक्रिया से सम्बन्धित है। इस आधार पर भी डॉ. गर्ग ने व्यंग्य को तीन रूपों में विभक्त किया है- १. हास्य से युक्त व्यंग्य २. कटु यथार्थ से युक्त व्यंग्य और ३. करूण व्यंग्य। प्रथम रूप, हास्य से युक्त व्यंग्य में किया गया प्रहार, हास्य की सृष्टि के आवरण में हल्का हो जाता है एवं उसकी तेजाबी तीक्ष्णता अपेक्षाकृत कम हो जाती है। इस व्यंग्य में मधुवेष्टित कड़वाहट अनुभूत होती है। इस व्यंग्य की मार में प्रहारकर्ता

व लक्ष्य (आलम्बन) दोनों ही मंद-मंद मुस्कराते भी हैं और मन ही मन व्यंग्य के तीव्र दंश की अनुभूति भी करते रहते हैं। यह कहा जा सकता है कि, "वर्तमान युग में जबकि हर क्षेत्र में विसंगतियों का बोलबाला है, विडम्बनाओं की भीड़ है और इन सब पर हँसने-हँसाने की अपार साम्रगी उपलब्ध है, यदि युग के सत्यों को मात्र हास्य-व्यंग्य के माध्यम से ही व्यक्त किया जाएगा तो लोग विसंगतियों से उत्पन्न पीड़ाओं को हँसी-मजाक समझकर उड़ा देंगे तथा जीवन की असमानता, शोषण से उत्पन्न होने वाला आक्रोश मात्र चुटकुला बनकर रह जाएगा। इसलिए हास्य-व्यंग्य लिखने वाले कवियों के लिए यह आवश्यक है, कि उनका व्यंग्य मात्र मनोरंजक न हो, उसका कथ्य सार्थकता लिए हुए पर्याप्त गम्भीर एवं युक्तियुक्त भी हो।"[१]

प्रभाव की दृष्टि से विवेचित व्यंग्य के दूसरे रूप से जीवन के कटु यथार्थ का तीव्र बोध होता है। इसमें व्यंग्यकार सत्य के यथार्थ पक्ष को अत्यन्त ही निर्ममतापूर्वक अभिव्यक्त करता है। सत्य प्रकट करने की अनुभूति की अभिव्यक्ति में व्यंग्यकार सहानुभूति प्रदर्शित नहीं कर सकता क्योंकि व्यवस्था की विषमता की तीव्र प्रतिकिया का आकोश अपनी चरम सीमा पर होता है। इस श्रेणी के व्यंग्य में कुनैनी स्वाद की अनुभूति होती है और समकालीन परिस्थितियों से आवेष्टित होने पर इसका प्रभाव इतना मार्मिक होता है, कि श्रोता और रचनाकार दोनों ही बुरी तरह से तिलमिला जाते हैं।

व्यंग्य के तीसरे रूप 'करूण व्यंग्य' की रचना में व्यंग्यकार स्थिति की करुणा और पीड़ा को उद्घाटित करता है। प्रहारात्मक अथवा आक्रमणमूलक दृष्टि से सर्वथा दूर इस व्यंग्य में रचनाकार अवसाद भाव की सृष्टि करता है। स्थिति की विडम्बना और विवशता की प्रधानता के सन्दर्भ में रचनाकार करुण व्यंग्य की सृष्टि करता है। जीवन की असहाय परिस्थितियों की समर्थ अभिव्यंजना ही करुण व्यंग्य की समर्थ अभिव्यक्ति बन जाती है।

डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी ने डॉ. गर्ग की भाँति प्रकारान्तर से व्यंग्य

---

१. डॉ. शेरजगं गर्ग, 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य', पृष्ठ-७२.

का वर्गीकरण आश्रय के आधार पर किया है -" वास्तव में व्यंग्य दो प्रकार का होता है - १. व्यक्तिगत व्यंग्य और २. समष्टिगत व्यंग्य। समष्टिगत व्यंग्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है १. धर्म-सम्बन्धित २.समाज-सम्बन्धित ३. साहित्य-सम्बन्धित ४. राजनीति-सम्बन्धित तथा ५.मानवीय दुर्बलताओं से सम्बन्धित।"[१] व्यक्तिगत व्यंग्य के सम्बन्ध में डॉ. चतुर्वेदी का मत है कि - "किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य बनाकर जो व्यंग्य किया जाता हैं, वह व्यक्तिगत व्यंग्य कहा जाता हैं। व्यक्तिगत व्यंग्य के औचित्य अथवा अनौचित्य पर विभिन्न मत हैं। कभी-कभी इसके परिणाम भयंकर होते हैं। यदि व्यंग्यकार अपनी व्यक्तिगत जलन के कारण किसी व्यक्ति-विशेष पर व्यंग्य करता है तो वह आश्रित है। हाँ, यदि व्यंग्यकार व्यक्ति-विशेष को लक्ष्य बनाकर व्यंग्य करने से किसी प्रचलित बुराई के प्रति सफल हो जाता है तो वह उपयोगी माना जाएगा--- यद्यपि व्यक्तिगत व्यंग्य में कटुता, तिक्तता तथा पित्त का अंश अधिक मात्रा में होता है तब भी कहीं-कहीं यह विशेष विधा अनिवार्य हो जाती है।"[२]

'व्यंग्य' के वर्गीकरण के विषय में "न्यू स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ दि इंग्लिश लैंग्वेज' में व्यंग्य के निम्नलिखित रूपों की चर्चा की गई है- यथा-'Intellectual Satire ' अर्थात् बौद्धिक व्यंग्य, जो कि व्यक्तिगत अथवा नीतिगत घृणा से बल प्राप्त करता है।'Imaginative Satire ' अर्थात् काल्पनिक व्यंग्य जो कि मुस्कराहट के सुखप्रद समीर से संवलित है। ' Dramatic Satire' अर्थात् नाटकीय व्यंग्य, जो दौरा करने वाले चरणों द्वारा 'क्लासिकल ऐंटीक्वीटिज' में प्रयुक्त है। 'Poetical Satire' अर्थात् काव्यात्मक व्यंग्य, जो रोमनों के विचित्रतापूर्ण साहित्य में 'एनिन्स' के द्वारा प्रचलित है।'[3]

एडवर्ड डब्ल्यू रोजेनहिन ने अपनी पुस्तक "स्वीफ्ट एण्ड द सैटायरिस्ट आर्ट' नामक पुस्तक में 'प्यूनिटिव सटायर' (Punitive Satire) तथा परस्यूसिव सटायर (Persuasive Satire) नामक दो प्रकार के व्यंग्यों की चर्चा की है।"[४] गोल्डस्मिथ ने 'अटलांटिक मंथली' में तीन प्रकार के व्यंग्यों की

---

१. डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी, 'आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य', पृष्ठ-२४

२. वहीं, पृष्ठ-२४

३. डॉ. स्वर्णीकरण अग्रवाल, 'व्यंग्य: हास्य से पार्थक्य की दिशाएँ' (लेख) आभीक, अंक-द्वितीय, वर्ष-७४ पृष्ठ-५०

४. एडवर्ड डब्ल्यू रोजेनहिन, 'स्वीफ्ट एण्ड द सटायरिष्ट आर्ट', पृष्ठ-१०९

चर्चा की है- प्रथम, भौतिक व्यंग्य (Epicurean) जो मनुष्य की भोगवादी प्रवृत्तियों पर उपहास भाव से हँसी उड़ाता है। द्वितीय, उदासीन (Stoical) व्यंग्य, जो मानव जाति की विद्रूपताओं पर आक्रोशपूर्ण भर्त्सना करता है तथा तृतीय, अशिष्ट (Synical) व्यंग्य, जो मानव जाति की घृणा को मुखरित करता है।''[१]

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है, कि व्यंग्य के प्रकारों के सम्बन्ध में परिवेश और प्रभावों के सन्दर्भ में किये गये वर्गीकरण को स्वीकारना अच्छा होगा। व्यंग्य की भाव-धारा सम्पूर्ण जीवन की व्यापकता को संस्पर्श करती हुई बहती है और यहीं प्रवृत्ति व्यंग्य की मूल विशेषता है। जीवन की सम्पूर्ण विसंगति व्यंग्य का लक्ष्य बन चुकी है। औद्योगिकीकरण के कारण मानव-जीवन जटिल होता जा रहा है। आपाधापी, कुंठा, आकांक्षा, अस्तित्ववादी दृष्टि, व्यक्तिवादी दृष्टि आदि के कारण व्यक्ति का अपना जीवन, दाम्पत्य जीवन, पारिवारिक जीवन, बृहत् सामाजिक जीवन विसंगतियों एवं विद्रूपताओं से भर गया है। अत: उसके प्रत्येक क्रिया-कलाप में कृत्रिमता आ गयी है। व्यंग्य-विधा में इन्हीं सब का समावेश होता है। ''ईश्वर, पूँजीपति, विदेशी शासन, शिक्षा-नीति, सामाजिक संस्थानों, धार्मिक मठों, राजाओं-नवावों, तथाकथित प्रगतिशीलों, नकलची आधुनिकों, मनुष्यता को समाप्त कर डालनेवाली वैज्ञानिक उपलब्धियों, सामन्ती मनोवृत्ति (यथा बृद्ध-विवाह, बहुपत्नी प्रथा), किसानों का शोषण करने वाले महाजनों, भिखारियों पर झूठी दया दिखाने वाले दानियों, मनुष्य को कार्टून बना डालने वाली विसंगतियों, साम्राज्यवादी आकांक्षाओं, क्लर्कों एवं निम्न मध्यवर्ग की दुरावस्था, साम्प्रदायिकता, राजाश्रय-सेठाश्रय में कविता रचने वाले कवियों तथा गांधीजी की अहिंसा आदि-आदि को कवियों द्वारा व्यंग्य का आलम्बन बनाया गया है।''[२] अत: व्यंग्य की समस्त चेतना को स्वीकारते हुए उसे वर्गीकरण की स्थूल सीमाओं में बाँधना कठिन है। व्यंग्य की व्यंजना का व्यापार केवल इसी दृष्टि से वैज्ञानिक आधार प्राप्त कर सकता है कि उसको मानव-जीवन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में स्वीकारते हुए भारतीय सन्दर्भों

१. के. आर. श्रीनिवास आयंगर, 'दि एडवेंचर ऑफ क्रिटिसिज्म', पृष्ठ-१३०

२. डॉ. शेरजंग गर्ग, 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य', पृष्ठ-२३०

में वर्गीकरण किया जाए। इस प्रकार 'व्यंग्य' राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आयाम के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

हास्य और व्यंग्य के परस्पर सम्बन्ध और अन्तर का विश्लेषण

भारतीय काव्याचार्यों ने आधुनिक व्यंग्य के शास्त्रीय पक्ष के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप में कुछ भी नहीं कहा है। इसके साथ ही उन्होंने 'हास्य रस' को भी गौण ही माना है। इसका कारण कदाचित् पौर्वात्य एवं पाश्चात्य संस्कृति में मानव को देखने की दृष्टि में भिन्नता रही है। भारतीय मनीषी सुन्दर और मंगल तत्वों की भूमिका में ही अपनी कृति का ताना-बाना बुन सकते थे जबकि पाश्चात्य साहित्यकार अपनी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का उपयोग करने के लिए स्वतन्त्र था। काव्यशास्त्रीय मर्यादा और भावनाओं पर नियंत्रण होने के कारण विद्रूपतापूर्ण मानव-व्यवहार, व्यंग्य विडम्बना और कटु आलोचना की सीमा को पूर्णतया स्पर्श न कर सका। ऐसा व्यवहार करने से संस्कृत-नाटकों के पात्र हमारी अनुकम्पा और प्रशंसा के अधिकारी नहीं हो सकते थे। 'आदर्श पात्र' की कल्पना के कारण ही भारतीय विदूषक अपनी दुर्बलताओं और कमियों के बावजूद पाश्चात्य विदूषकों की भाँति दुष्ट न हो सका।

देश और काल की मर्यादा में रहकर भरतादि काव्याचार्यो ने हास्य और प्रहसन आदि के शास्त्रीय स्वरूप की चर्चा की है। यह कहना अनुचित न होगा कि प्राचीन साहित्य में हास्य और व्यंग्य परस्पर पर्याय-से रहे हैं। प्राचीन प्रहसन प्राय: हास्य प्रधान थे, किन्तु तब भी व्यंग्य हास्य की आड़ में रहकर कहीं सूक्ष्मरीति से, तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप से अपने अस्तित्व का बोध करा रहा था। कोई भी बात अपनी प्रारम्भिक अवस्था में पूर्णत: स्पष्ट नहीं होती, जैसे-जैसे परिस्थितियाँ उसके अनुकूल या प्रतिकूल होती जाती हैं उसी अनुपात में उसका विकास या ह्रास होता जाता है। अत: व्यंग्य के प्रायोगिक रूप को खोजने के लिए हमें भरतादि जैसे प्राचीन काव्य मनीषियों के हास्य एवं प्रहसन सम्बन्धी विचारों का ही आधार लेना पड़ेगा। नाट्यशास्त्र के आदि आचार्य भरतमुनि ने हास्य के निम्नांकित कारणों की ओर संकेत किया है-

"विपरीतालंकारैः विकृताचाराभिधान वैषेश्य।
विकृतैरर्थविशेषैर्हसतीति रसः स्मृतो हास्यः"[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भरत ने आकार, वेष, आवरण, अभिधान, वाणी और अलंकारादिगत विकृति को ही हास्य का मूल कारण माना है। इसी प्रकार दूसरों के विकृतिवेष, आभूषण, भ्रष्टता, चपलता का नटन, दूषित प्रलापन, व्यंग्यदर्शन और दृष्टिदोष आदि हास्य के कारण हैं।'[2]

आधुनिक प्रतीकात्मक दृष्टि से उपर्युक्त कारणों को व्यंग्य विमर्श के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। आधुनिक व्यंग्य के मूल में विकृति ही प्रायः कारणभूत तत्व है। यहाँ, यह स्मरणीय होगा कि मनोभावों के स्वरूपगत आधार पर हास्य और व्यंग्य के चरित्र में अन्तर उपस्थित हो जाता है। वस्तुतः हास्य उत्पत्ति के जो सिद्धान्त हैं, वही मनोगत पृष्ठभूमि के बदलने पर व्यंग्य-सिद्धान्त के रूप में भी परिणति पा सकते हैं। व्यंग्य का सम्बन्ध आलम्बन के प्रति व्यक्त आक्रोशात्मक और विरोधात्मक मनोभावों से है। आलम्बन के प्रति घृणा, निन्दा आदि जैसे भाव व्यंग्याभिव्यक्ति को प्रहारात्मक बना देते हैं। हास्य के पक्ष में विकृतिगत मनोभाव आलम्बन के प्रति करुणा या सहानुभूति प्रकट करने के कारण सुखात्मक हो सकते हैं। बस, यहीं मानसिक-प्रकृतिगत अन्तर व्यंग्य को हास्य से पृथक् कर देता हैं। भरतमुनि द्वारा आदिष्ट पात्रों की वेशभूषा-गत विकृति का आधुनिक रूप बड़ा व्यंग्यीय हो जाता है।

आचार्य भरतमुनि के परवर्ती आचार्यो ने हास्य के सम्बन्ध में कोई विशिष्ट बात नहीं कहीं। धनंजय और सागरानंद ने विकृति को, भामह, रूद्रट और राजशेखर ने अलंकार और वक्रोक्ति को तथा अभिनवगुप्त ने अनौचित्य या रसाभास को हास्य का मूल कारण माना है। उपर्युक्त हास्य उत्पादन के मूल कारणों की अनेक प्रकार से विस्तृत और व्यापक चर्चा इन काव्याचार्यो ने की है। हास्य के सम्बन्ध में सूत्रात्मक रूप से विवेचित उनके विधानों के मूल में भी व्यंग्य-विमर्श का सूक्ष्म संकेत मिल जाता है। हास्य और व्यंग्य के मूल में विकृति विवेच्य प्रसंग है। पश्चिम के विद्वानों ने भी व्यंग्य की प्रेरणा विकृति या असंगति को माना है।दोनों में

---

१. भरतमुनिः 'नाट्यशास्त्र', पृष्ठ-१३४
२. वहीं, अध्याय-६.

अन्तर इतना है, कि व्यंग्यगत विकृति प्राय: अप्रत्यक्ष, अगोचर या छिपी रहती है, जिसे व्यंग्यकार अपनी पारदर्शी दृष्टि से उजागर कर देता है। हास्यगत विकृति स्थूल और बाहरी होती है जो दर्शकों एवं पाठकों कों हँसाती है। अत: वह क्षम्य और सुखात्मक होती है जबकि व्यंग्य की विकृति पीड़ात्मक होने के कारण प्रहारात्मक होती है।

डॉ. मलय हास्य और व्यंग्य के सम्बन्ध के विषय में कहते हैं कि 'व्यंग्य शुद्ध हास्य से प्रारम्भ होने वाली हास्य यात्रा का अन्तिम छोर होता है जिसमें अनुभवशीलता का पर्याप्त हाथ रहता है। इसमें मानसिक सूक्ष्मता के साथ-साथ अपने आसन्नगत आसंगी तत्वों की प्रतिस्थापना रहती है। ये आसंगी तत्व व्यक्ति की बौद्धिकता की प्रौढ़तर प्रक्रिया के प्रतिरूप ग्रहण होते चलते हैं। अत: हास्य बौद्धिक प्रक्रिया के इस रचनात्मक धरातल पर आकर जीवन की एक अविछिन्न यात्रा का पर्याय बन जाता है। ऐसी यात्रा जो व्यंग्यबोध के स्तर तक पहुँचकर एक शक्तिशाली आयाम में परिवर्तित हो जाती है।[१]

पाश्चात्य विद्वान् 'हेरल्ड निकोल्सन' ने (दी सेन्स ऑफ ह्यूमर एण्ड अदर एसेज में) हास्य के दो रूपों की परिकल्पना की है जिसमें "सभी प्रकार के हास्य को दो श्रेणियों में १. आत्मस्फुरित हास्य एवं २. चिन्तनशील हास्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।"[२]

निकोल्सन ने मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति या अनुरंजन की प्राथमिक चेतना से उद्भूत हास्य को 'आत्मस्फुरित' हास्य कहा है। यह हास्य किसी घटना की तात्कालिक और प्राय: शारीरिक प्रतिक्रिया का द्योतक है। सभी प्रकार की क्रिड़ाएँ, आपसी छेड़-छाड़ और व्यावहारिक मजाक, शारीरिक असंगति, बेढ़ंगापन, विरूपता, अश्लीलता एवं गुप्तेन्द्रिय सम्बन्धी मजाक, असंगति या निष्फलता का प्रत्यक्ष प्रदर्शन, मूक मसखरी, विदूषकीय चुहल आदि आत्मस्फुरित हास्य के उदाहरण हैं। अभिप्राय यह है कि आत्मस्फुरित हास्य एक सहज प्रवृत्ति है- जिसकी पुष्टि असंगति से होती है। यह आनन्द, आवेग, मात्सर्य, चापल्य आदि भावनाओं से भरी रहती है। यह शरीर मानस-प्रक्रिया है। यह शुद्ध हास्य है।

---

१. डॉ. मलय: 'व्यंग्य का सौन्दर्य शास्त्र', पृष्ठ-६०

२. वहीं, पृष्ठ-५४

इसके ठीक विपरीत चिन्तनशील हास्य है, जिसमें मास्तिष्क अपेक्षाकृत अधिक क्रियाशील रहता है। यह चेतना की अपेक्षा अनुभवजन्य होता है और उसमें मूल्यों का ज्ञान अधिक तत्परता से होता है। इस प्रकार के हास्य में सामान्यत: जीवन या किसी व्यक्ति के दोष, मूर्खता या दिखावे के प्रति उपलक्षित आलोचना होती है। हेरल्ड निकोल्सन ने चिन्तनशील हास्य के उदाहरण स्वरूप तीक्ष्ण वैदग्ध्य, व्यंग्य, विडम्बना, कटाक्ष, हेयहास, दिखावों के मुखौटे उघाड़ देना, असंगति, प्रतिकूलता और निष्फलता के सूक्ष्मरूप आदि का उल्लेख किया है।

वस्तुत: चिन्तनशील हास्य में विचारतन्तुओं की क्रियात्मकता के जाल बिछे हुए रहते हैं अत: यह व्यंग्य का निकटवर्ती या उसके अपने आंशिक रूपों में उसकी छाया में पनपने वाला हास्य है। इसे 'परिहास' की संज्ञा दी गई है। आत्मस्फूर्ति (शुद्ध) हास्य और व्यंग्य के बीच की सीढ़ी चिन्तनशील हास्य (परिहास) है। व्यंग्य तक होने वाली हास्य की यात्रा परिहासपरक होती है। मनोविश्लेषक 'फ्रायड' ने हास्य की तीन विकासमान स्थितियों की पुष्टि की है- "प्रथम, बचपन का खेल जिसमें प्रारम्भिक प्रकार की शब्द क्रिड़ा सम्मिलित है और जिसमें अर्थ की अपेक्षा ध्वनि संसर्ग के कारण आनन्द मिलता है। द्वितीय, 'चुहल' है जिसके द्वारा वयस्क बचपन के हर्ष को इस प्रकार व्यक्त करता है कि बचपना करते हुए भी उस पर कोई भी बचपना का आरोप न लगा सके। तृतीय, वैदग्ध्य है जिसमें बुद्धिमान व्यक्ति अपनी चुहल को बैदग्ध्य बना लेता है जो मस्तिष्क को प्रसन्न करने वाला बन जाता है। यह तारतम्य संक्षिप्त में इस प्रकार है-क्रीड़ा-मजाक-वैदग्ध्य।'[१] 'इसी को हम अपनी विकासमान अवधारणा के अनुसार मोड़कर स्थूल रूप से शुद्ध हास्य-परिहास-व्यंग्य के रूप में भी देख सकते हैं। जिसकी विकसित सत्यता में किसी प्रकार की शंका नहीं रह जाती। इसी आधार पर हम प्रस्तुत होकर, सहज सामाजिक रूप से बौद्धिक मनुष्य के तीक्ष्ण वैदग्ध्य से व्यंग्य, बिडम्बना आदि और उसमें निहित या उपस्थित होने वाले व्यंग्यकार के दायित्वपूर्ण उपलक्ष्यों की ओर पहुँचते हैं।'[२] इस प्रकार हास्य व्यंग्य के सम्बन्ध के विषय में इतना

---

१. डॉ. मलय: 'व्यंग्य का सौन्दर्य शास्त्र', पृष्ठ-६०

२. वहीं, पृष्ठ-६०-६१

तो कहा ही जा सकता है कि व्यंग्य-चाहे जिस प्रकार का भी क्यों न हो और चाहे अपने अन्तिम प्रभाव या परिणाम में वह कितना भी दु:खात्मक क्यों न हो, उसकी यात्रा प्राय: हास्य से शुरू होकर परिहास, तिक्त परिहास, उपहास आदि पड़ावों को पार करती हुई अपने लक्ष्य पर पहुँचती है।

हास्य और व्यंग्य दो भिन्न मनोदशाओं की प्रसूतियाँ है। इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। व्यंग्य अन्तर्मुखता से प्रसूत है, तो हास्य बर्हिमुखता से। सामान्यत: व्यंग्य में अर्थ-भंगिमा की प्रधानता रहती है तो हास्य में प्रसंग-वैचित्र्य की। व्यंग्य में खीझ, आक्रोश और प्रहार की प्रवृत्ति है तो हास्य में उल्लास और उमंग की। व्यंग्य पीड़ा, घृणा, आक्रोश आदि दु:खात्मक वर्ग की अनुभूतियों का प्रहारात्मक प्रकाशन है तो हास्य उल्लास, विनोद, मस्ती, चुहल आदि सुखात्मक वर्ग की मनोदशाओं का उन्मुक्त उच्छलन। दोनों की सम्प्रेषणीयता में भी भारी अन्तर है। व्यंग्य प्रबुद्ध मन की बौद्धिक क्रिया है, अत: इसके पाठकों का भी प्रबुद्ध होना आवश्यक है किन्तु हास्य के प्रमोद-परिसर में तो मन्द से मन्द बुद्धि वाले पाठक भी उल्लास से झूम उठते हैं।

प्रख्यात व्यंग्यकार श्री शरद जोशी की मान्यता है कि "ऐसा होता है कि व्यंग्य की खराद पर चढ़ी हुई किसी स्थिति का अन्तर्विरोध अनायास हास्य पैदा करता है, लेकिन व्यंग्य हास्य से बहुत आगे की चीज है। हास्य विकृति का रस लेकर वर्णन करता है, विकृति के विरोध में पैदा होने वाली तीव्र बौद्धिक प्रतिक्रिया व्यंग्य के अन्तर्गत आती है। हास्य शब्द- कौतुक से भी पैदा हो जाता है, लेकिन व्यंग्य के पीछे विचार की एक गहरी सरणि होती है, जो हँसी भी पैदा कर लेती है, लेकिन उस हँसी के बाद उभरती है कचोट, तिलमिलाहट, जो सोचने को मजबूर करती है। व्यंग्यकार को सावधान वहीं रहना पड़ता है, जहाँ एक हल्की-सी फेंस होती है कि जिसके इस पार मात्र परिहास का उथलापन होता है और उसपार होती है -विकृति के विरोध में आवाज बुलंद करने की ताकत। इस फेंस को पहचानना सफल व्यंग्य-लेखन के लिए बहुत जरूरी होता है।"[१]

---

१. कन्हैयालाल नन्दन (सं.), 'श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', पृष्ठ-७

डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी लिखते हैं – ''हास्यकार अपने आलम्बन का मजाक सहानुभूतिपूर्ण ढ़ंग से उड़ाता है, जबकि व्यंग्यकार का उद्‌देश्य हँसी द्वारा दण्ड देना होता है। हास्य का उद्‌देश्य विशुद्ध मनोरंजन करना होता है, जबकि व्यंग्य का उद्‌देश्य सुधार करना होता है। हास्य में भाव-तत्व प्रमुख होता है, व्यंग्य में बुद्धितत्व। व्यंग्यकार हर प्रकार की विकृति को गम्भीरता से देखता है, निर्ममता से उसका पर्दाफास करता है एवं समाज से अपेक्षा करता है कि उस व्यक्ति की भर्त्सना करे जबकि हास्यकार उस विकृति का वर्णन कर सन्तोष कर लेता है।--- हास्यकार असंगतियों के चित्रण में रस लेता है जबकि व्यंग्यकार विद्रोह को वाणी देता है।''[१]

एल. जी. पाट्‌स के मत में '' कामदी, मानव-प्रकृति और जीवन को सहानुभूति और सदाशयता से ग्रहण करती है, यदाकदा उसका क्षोभ भी प्रकट हो जाता है लेकिन उसकी उदारता भी अदृष्ट नहीं रह पाती जबकि व्यंग्य, विकृति को न केवल नकारता ही है बल्कि उनका विध्वंस करके ही छोड़ता है।''[२]

मेरीडिथ लिखते है कि ''व्यंग्यकार जैसे ही भावना प्रधान हुआ, वह हास्य के क्षेत्र में पहुँच जाता है और यदि हास्यकार में आलोचना प्रवृत्ति तीव्र होगी तो तुरन्त व्यंग्य-क्षेत्र में पहुँच जायेगा।''[३] हास्य और व्यंग्य के अन्तर को स्पष्ट करते हुए मेरीडिथ आगे लिखते है ''व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है, बहुधा वह समाज की गन्दगी की सफाई करने वाला होता है जिसका काम सामाजिक विकृतियों की गन्दगी को साफ करना होता है जबकि हास्यकार में तटस्थता होती है, आलम्बन के प्रति दया और करूणा होती है।''[४]

---

१. डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी, 'आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य', पृष्ठ-१२
२. एल. जी. पाट्‌सः 'कामेडी', पृष्ठ-१५५
३. मेरीडिथः 'आइडिया ऑफ कामेडी', पृष्ठ-७९
४. मेरीडिथः 'आइडिया ऑफ कामेडी', पृष्ठ-८२